

ग्लोबल गाँव के देवता : आदिवासी विमर्श का महाआख्यान



मनमीत कौर

बमनदिहा पोस्ट ऑफिस के पास
डाक सुंदरचक, जिला बर्दवान,
प. बंगाल - 713360
मो. 8436798282

प्र

ख्यात आदिवासी चिंतक डॉ. रामदयाल मुण्डा ने कभी कहा था कि विश्व बाजार की सभी शक्तियों की नजर आदिवासी क्षेत्रों पर लगी है, क्योंकि विश्व के सारे प्राकृतिक संसाधन आदिवासी क्षेत्रों में ही हैं। भारत में विकास के नाम पर, विशेषकर आजादी के तुरंत बाद से अब तक के वर्षों में जो तबाही मची है वह किसी से छिपी नहीं है। पूरी आबादी का पंचमांश (करीब दो करोड़) विकासजनित विस्थापन के कारण बेघर हो गया है और गरीबी-भुखमरी, बीमारी और निरक्षरता में देश के महानगरों की झुग्गी-झोपड़ियों में जीवनयापन करने को विवश हैं। जिन क्षेत्रों में उनका सामाजिक जीवन अपेक्षाकृत कम टूटा हुआ है, वह अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा की लड़ाई लड़ रहा है। अब तक साँस लेने की जो भी जगह बची है, वह इन्हीं संघर्षों से बची है। आदिवासियों के इन्हीं संघर्षों का महाआख्यान है, रणेंद्र द्वारा रचित उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता'। यह उपन्यास अपने लघु कलेवर के बावजूद आदिवासी विमर्श के सभी पहलुओं को उजागर करने में सक्षम है। आदिवासियों के बारे में आम धारणा है कि इनका जीवन हर्षोल्लास, नृत्य-संगीत से भरा पड़ा है। किंतु गत कुछ वर्षों से चर्चा में आए आदिवासी विमर्श के माध्यम से पता चलता है कि वास्तविकता कुछ और है। दरअसल आदिवासियों के जीवन का ध्येय ही रह गया है- जीने के लिए संघर्ष, अपनी अस्मिता एवं जाति को बचाए रखने के लिए संघर्ष। ग्लोबल गाँव की अवधारणा ने विकास के जो पैमाने तैयार किए उसमें ये आदिवासी स्वयं को 'फिट' नहीं पाते हैं। इस कारण इनकी कई जनजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं, जो कि चिंताजनक स्थिति है। अंडमान-निकोबार की जारवा, ओंग और सेंटीनली जनजातियाँ विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं। कुछ वर्षों पहले बोआ जनजाति के एकमात्र सदस्य की मृत्यु होने से, उनके द्वारा बोले जाने वाली 'बो' भाषा भी विलुप्त हो गयी है। पश्चिम बंगाल की विलुप्तप्राय टोटो और राभा जनजाति की तरह ही न जाने कितनी जनजातियाँ विकास के इस मॉडल की भेंट चढ़ने को तैयार हैं।

'वसुवैध कुटुम्बकम्' की तर्ज पर 'विश्वग्राम' या 'ग्लोबल गाँव' की परिकल्पना तो कर ली गयी किंतु भारतीय संस्कृति में 'वसुवैध कुटुम्बकम् : सम्पूर्ण विश्व एक परिवार', रूपी जो अपनत्व की भावना थी वह 'विश्वग्राम' की अवधारणा में निहित नहीं हो पायी। 'विश्वग्राम' में मानव कल्याण की कोई जगह नहीं, क्योंकि यह व्यापार और शोषण-तंत्र पर आधारित भोग-केंद्रित व्यवस्था पर बल देता है जबकि 'वसुवैध कुटुम्बकम्' मानव कल्याण पर आधारित त्याग और सहकार जैसे उदात्त मूल्यों पर केंद्रित व्यवस्था पर बल देता है। आदिवासियों ने भारतीय संस्कृति को पूरी तरह से आत्मसात् किया हुआ है जबकि 'विश्वग्राम' तो एक खास वर्ग द्वारा सुनहरा सपना दिखाने के नाम पर भोली-भाली जनता के शोषण हेतु सोची-समझी साजिश का परिणाम है। अब जब मैदानी इलाकों पर इनके 'मैक्डॉनलीकरण' का जादू पूरी तरह चल चुका है, वहाँ की खनिज-सम्पदा का उपभोग कर चुके तो इनकी गिद्ध-दृष्टि पहाड़ों एवं जंगलों में वास करने वाली आदिवासी जनजातियों की खनिज-सम्पत्ति पर आकर टिक गयी है। वैसे तो ये ग्लोबल गाँव के देवता इन आदिवासियों के विकास की बात करते हैं किंतु यह विकास के नाम पर इन्हें इनके ही जल, जंगल और जमीन से बेदखल करने की साजिश मात्र है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' में झारखण्ड राज्य के कोयलबीघा के भौरापाट में निवास करने वाली 'असुर' जनजाति के माध्यम से कथाकार ने सम्पूर्ण आदिवासी समाज से जुड़े हर पहलू एवं समस्याओं से हमारा साक्षात्कार कराया है जो आदिवासी

'विश्वग्राम' में मानव कल्याण की कोई जगह नहीं, क्योंकि यह व्यापार और शोषण-तंत्र पर आधारित भोग-केंद्रित व्यवस्था पर बल देता है जबकि 'वसुवैध कुटुम्बकम्' मानव कल्याण पर आधारित त्याग और सहकार जैसे उदात्त मूल्यों पर केंद्रित व्यवस्था पर बल देता है। आदिवासियों ने भारतीय संस्कृति को पूरी तरह से आत्मसात् किया हुआ है जबकि 'विश्वग्राम' तो एक खास वर्ग द्वारा सुनहरा सपना दिखाने के नाम पर भोली-भाली जनता के शोषण हेतु सोची-समझी साजिश का परिणाम है। अब जब मैदानी इलाकों पर इनके 'मैक्डॉनलीकरण' का जादू पूरी तरह चल चुका है, वहाँ की खनिज-सम्पदा का उपभोग कर चुके तो इनकी गिद्ध-दृष्टि पहाड़ों एवं जंगलों में वास करने वाली आदिवासी जनजातियों की खनिज-सम्पत्ति पर आकर टिक गयी है।